प्रस्तावना

प्रस्तावना

बीसवीं सदी के द्वितीय दशक के पूर्वार्द्ध तक हिन्दी साहित्य के इतिहास में जो प्रमुख काव्य प्रवृत्ति मिलती है, उसको छायावाद के नाम से अभिहित किया जाता है और बाद की कतिपय रचनाओं में भी इस काव्य प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। किसी भी परम्परा का जब जन्म होता है, तब उसके बहुत पहले से ही क्रिया–प्रतिक्रिया के रूप में उसके निर्माण के बीज भी दृष्टिगत होने लगते हैं। कतिपय विद्धान वैदिक साहित्य के द्विवेदी युग पर्यन्त भी छायावाद के दर्शन करते हैं, किन्तु वास्तविक छायावादी काव्य जिसको साहित्य–समीक्षा करने वाले विवेचकों ने 'छायावाद' की संज्ञा से स्वीकृत कर लिया है, वह द्विवेदी युग की प्रतिक्रिया से उत्पन्न काव्य ही है जिसे 'छायावाद' कहा जाता है। छायावाद न तो विदेशी काव्य का अन्धानुकरण है, न सहसा प्रादुर्भूत कोई नवीन प्रवृत्ति है। यह हिन्दी साहित्य की आधुनिक काव्य–धारा का सोपान बद्ध विकसित रूप है, जो सामयिक परिस्थितियों की अपेक्षा के साथ साहित्य के रंगमंच पर अवतीर्ण हुआ था। द्विवेदी काल की वर्णानात्मकता, इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता की प्रक्रिया के रूप में ही छायावाद का उद्‌भव और विकास हुआ। छायावाद कविता की प्रौढ़ावस्था का युग था। कविता अपनी बाल्यावस्था व्यतीत कर यौवन में पर्दापण कर रही थी। उसमें भोलापन और कैशोर्य का जन्म सरलता के स्थान पर गुरूगाम्भीर्य और मदिर माधुर्य रूप में प्रस्फुटित होने लगा था। उसमें कान्तिमयी तरलता ने अपनी ऐसी छाया उत्पन्न कर दी थी, जो परीशीलकों की चेतना को सहसा अभिभूत कर लेती थी। उसमें भावात्मकता का संचार हो गया था।

द्विवेदीयुग की कविता के विरूद्ध नवीन प्रभावशाली युग के कवियों ने जिस प्रेम सौन्दर्यमयी भाव और कल्पनामयी कविता को जन्म दिया, उसे 'छायावाद' कहा गया। 'छायावाद' शब्द 'छाया' अर्थात् छायाभास से निकला है। यह धारणा आचार्य शुक्ल जी की है। इसी के साथ कविवर जयशंकर प्रसाद ने लिखा है कि प्राचीन संस्कृत काव्य में 'छाया' शब्द मोती की 'आभा' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस सम्बन्ध में प्रसाद जी

उदघृत करते हैं "मुक्ताफलेषु यायास्तरलत्वमिवान्तरा, प्रतिभाति यदंगेषु तल्तावण्य–मिहोच्यते"। "मोती के भीतर की छाया, जैसी तरलता लिये होती है वैसी ही कान्ति की तरलता मानव अंग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में 'छाया' और 'विच्छित्ति' कहकर निरूपित किया गया है।

'छाया' स्त्रियों के गुणों में से एक गुण मानी गयी है। इसका अर्थ होता है 'अग्राम्यतासूचक सूक्ष्मभंगिमा' छायावादी कर्तृत्व उसी भावभंगिमा से सम्बद्ध है, जो वस्तु का मूल्य बढ़ाने वाली होती है। छाया जैसी कोमलता और स्वप्नप्रियता इसका प्राण तत्त्व है। छायावाद कोरी वस्तुवादी धारणा से सन्तुष्ट नहीं रहा, वह तो वस्तु में एक आध्यात्मिकता और स्थूल में एक सूक्ष्म की स्वप्निल आभा देखता आया है। छयावाद वस्तुओं में उनकी कटी–छटी सीमाओं के अतिरिक्त और कुछ देखने की प्रवृत्ति का फल है; वह इन्द्रियगोचर जगत् का भाव–जगत् के साथ समन्वय करता है। मनुष्य के लिए जड़–जगत् पत्थर की भाँति अभेध नहीं रहता, वह मोम की भाँति उसके भावों के साँचे में ढल जाता है। जड़ चेतना के लिए बन्धन नहीं रहता, वरन् वह आत्मा के प्रकाश के लिए पारदर्शक हो जाता है। जड़ पदार्थ भी आत्मीय भाव धारण कर लेते हैं, और प्रकृति मनुष्य की सहचरी बन जाती है। छायावादी कवि प्रकृति में भी मानवीय भावों की छाया देखता है। उसके लिए पुष्प की पंखुड़ियाँ मधु के कटोरे बन जाते हैं। अलि–बालाएँ मधुपान करती हैं और तारागण आकाश के नेत्र बन जाते हैं और कवि उसमें मौन संकेत पाता है।

छायावादी कवियों ने अपनी कविता पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखकर कुछ श्रेष्ठ विचार व्यक्त किये हैं, ये विचार इसकी कविता के स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हैं। समालोचना के क्षेत्र में छायावादी कवियों के विचारों को स्वच्छंदतावादी आलोचना के नाम से जाना जाता है। यह आलोचना सौन्दर्य प्रधान है।

छायावादी कवियों को सूक्ष्म स्वप्नप्रियता और सौन्दर्यबोध के साथ मानवीकरण, विशेषण–विपर्यय जैसे लाक्षणिक प्रयोगों का तथा भाषा चित्रों का जो अवदान है, वहां बुद्धिवाद की तुलना में भाव–भंगिमा का विशेष योगदान है। 'छायावाद' ने वासना के कर्दम से मुक्त सौन्दर्य को शुद्ध निर्मल रूप दिया है। उसमें प्रेम के गीत अवश्य गाये

गये हैं, किन्तु उसमें आत्मसर्मपण की कोमल भावना अधिक है। इस काव्यधारा ने जिस प्रेम सौन्दर्य की अभिव्यंजना की है, वह शास्त्रीय दृष्टि से पौर्वात्य एवं पाश्चात्य मतों के समन्वयी स्वरूप की चिन्तनधारा है, जिसने हिन्दी आलोचना को उपकृत किया है। विद्वानों ने इसे सौष्ठववादी या स्वच्छन्दतावादी आलोचना पद्धति की संज्ञा दी है। भारतीय समीक्षा शास्त्र मूलतः संस्कृत में विरचित होने के कारण दो दृष्टियों को लेकर चला है निर्मित तथा आस्वाद। 'निर्मित' कवि कर्म है और कविकर्म का ग्राह्य आनन्द ही 'आस्वाद' है। कवि कर्म में प्रकल्पना और रचना दोनों समाहित हैं। इस दृष्टि से छायावादी कवियों की प्रकल्पना या दर्शन उनका आत्म पक्ष है।

छायावाद भाव–बोध की दृष्टि से जहाँ, विगत वस्तु–बोध की भूमिका को छोड़कर एक और नवीन चैतन्य के शिखरों की ओर बढ़ा है, वहां कलाबोध की दृष्टि से, वह काव्यशास्त्रीय जड़ता एवं अलंकार युग की सौन्दर्य धारणा से अपने को मुक्त कर सीधा प्रकृति के मुक्त–पंख–प्रसारों में विचरण कर, नये सौन्दर्य उपादानों की खोज से निकल पड़ा और उसने चिर–परिचित सन्ध्या प्रभातों, ऋतुओं की परिक्रमाओं, पर्वत के अभ्रभेदी मौन शिखरों, नदी की दिव्य प्रवाह, फूल, पल्लव तरू, मर्मर तथा अन्तरिक्ष को एक नवीन अर्थवत्ता, नवीन सौन्दर्य चेतना प्रदान कर, नये काव्य संचरण के लिए नये कलात्मक उपकरणों का संचयन करना आरम्भ कर दिया। मध्ययुगीन जड़ प्रकृति छायावाद में सजीव तथा सचेतन होकर, अपनी महान् उपस्थिति से इस संक्रान्ति युग के संघर्ष पीड़ित, आत्ममूढ़, मनुष्य को उजस्र सांत्वना प्रदान करने लगी। इस प्रकार छायावाद ने अपना सौन्दर्य–बोध विगत युगों के संचय–स्वरूप जीर्ण खलिहानों एवं भण्डारों से उधार न लेकर, उसे स्वयं नये रूप में प्रकृति के उर्वर आँगन में उगाया, और उसकी प्राणमयी सुनहली बालियों से अपनी नवमुग्धा काव्य–चेतना का शृंगार किया। महादेवी वर्मा ने छांयावाद के महत्व को बताते हुए लिखा है–छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए, जो प्राचीन काल में प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था, जिसके कारण मनुष्य की प्रकृति अपने दुःख से उदास

और सुख से पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट कूप आदि से भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूप में प्रकट एक महाप्राण धारा बन गय अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओंस बिन्दुओं का एक ही कारण और एक ही मूल्य है।

नई पीढ़ी के युवकों का हृदय पुरानी मर्यादाओं से मुक्त हुआ तथा परिपाटियों और सामाजिक विधि–निषेधों से उन्हें छुट्टी मिली। औचित्य –अनौचित्य की नियमावली शिथिल हुई। इतना होना ही था कि हृदय से भावों का निर्झर फूट पड़ा। प्राणों से उच्छ्वास और आँखों से आँसू उमड़ चले। इसी उच्छ्वास और आँसू से छायावाद का आरम्भ हुआ। भावुकता कविता का पर्याय हो गयी।

छायावाद वस्तुतः साहित्य की एक कलात्मक प्रवृत्ति का नाम है इतिवृत्तात्मकता का प्रयोजन भी वक्रोक्ति और कलात्मकता के मार्ग को प्रशस्त करना ही है। किसी भी क्षेत्र में तथा किसी भी भाषा में सर्वप्रथम इतिवृत्तात्मकता ही काव्य के क्षेत्र में अवतीर्ण होती है और जब भाषा तथा क्षेत्र विशेष का उस माध्यम से पूर्ण परिमार्जन हो चुकता है, तब परवर्ती कवि, उसी में वक्रता तथा कलात्मकता लाने के प्रयास करते हैं। द्विवेदी कालीन इतिवृत्तात्मक प्रवृत्तियों में जब खड़ी बोली पूर्ण रूप में विकसित हो गयी, तब उसमें कला और वक्रता का संचार अनिवार्य था और यह काम छायावाद ने किया।

छायावाद अपनी शैली और शिल्प की दृष्टि से द्विवेदी–युगीन रूढ़िवाद को अपदस्थ करने में जहाँ स्वच्छन्दातावादी मंत्रोच्चार था, वह अपने विद्रोह की स्वच्छन्दता और यर्थाथता के धरातल पर आदर्शप्रियता में परिणित हो रहा था। स्वच्छन्दतावादी प्रकृति के अधिक निकट होने के कारण छायावादी काव्येतर ललित कलाओं के तात्त्विक समावेश को साथ लेकर चला है, छायावाद की लघुत्रयी के कवियों ने इस ललित चेतना पूर्ण कला को आत्मसात् किया श्री भगवतीचरण वर्मा का काव्य इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। ललित कलाओं का तात्त्विक मिश्रण, विशेषकर काव्य, चित्र और संगीत को परस्पर समन्वित करके उनके कुछ प्रमुख तत्त्वों का अधिकतम एकीकरण करना

स्वच्छन्दतवाद (रोमाण्टिसिज्म) की प्रमुख प्रवृत्ति है इसलिए छायावादी कवियों ने भी छायावाद की आलोचना पाँच दृष्टियों से की है–

1. छायावादी काव्य में काव्येतर ललित कलाओं का पारस्परिक सम्बन्ध
2. छायावादी काव्य में रोमांटिक प्रवृत्ति का प्रभाव,
3. रोमाण्टिक आन्दोलन और छायावाद
4. छायावाद में स्वदेशी सांस्कृतिक अन्तर्धारा का प्रभाव
5. छायावादी काव्य में ललित कलाओं का अन्तः सम्बन्ध

छायावादी कवियों ने अपने गद्य–लेखों में यत्र–तत्र कलाओं के सामान्य स्वरूप पर मौलिक ढंग से विचार किया तथा ललित कलाओं के अन्तः सम्बन्ध को सैद्धान्तिक धरातल पर स्वीकार किया। काव्येतर कलाओं के स्वरूप पर निराला ने 'काव्य में रूप और अरूप' तथा 'कला और देवियाँ' प्रसाद ने 'काव्य और कला' पन्त ने 'कला का प्रयोजन' तथा 'पल्लव' की भूमिका में और महादेवी ने 'सान्ध्यगीत' और 'दीपशिखा' की भूमिका और 'क्षणदा' जैसे कुछ निबन्धों में तात्त्विक और दार्शनिक दृष्टि से विचार प्रस्तुत किये हैं। ये सभी निबन्ध छायावादी काव्य की विशिष्ट प्रवृत्ति का समुद्घाटन करते हैं।

छायावाद अपने युग की जीवन धारा का लालित्य पूर्ण काव्य है इसकी दो धाराएँ हैं– वृहत्रयी एवं लघुत्रयी। छायावाद की वृहत्रयी काव्य धारा में प्रसाद, पंत और निराला आते हैं तथा लघुत्रयी काव्य धारा में महादेवी वर्मा, भगवतीचरण वर्मा तथा रामकुमार वर्मा आते हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा के काव्य का अनुशीलन छायावाद की पृष्ठभूमि में अद्यावधि नहीं हुआ है अतः यह आलोच्य विषय मौलिक तथा अनुसंधान की दृष्टि से अभिनव है।

जैसा कि कहा जा चुका है छायावादी की लघुत्रयी के कवि भगवतीचरण वर्मा आधुनिक भारतीय साहित्य के उन गिने–चुने कृतिकारों में रहे हैं, जो साहित्य को जीवन के ही समान व्यापक और बहुरंगी समझकर उससे जुड़ते हैं। जो केवल एक या

दो विधाओं या विषयों को अपनी सर्जना का माध्यम बनाकर, अपनी सम्भावनाओं को परिसीमित नहीं होने देते। कविता, कहानी, उपन्यास, एकांकी, नाटक, निबंध और हास्य–व्यंग्य इन सभी विधाओं में उन्होंने अपनी लेखनी चलायी। 'मेरी कविताएँ' नामक उनकी कृति सन् 1974 में प्रकाशित हुई। सन् 1928 के आस–पास उन्होंने साहित्यिक जीवन की शुरूआत की। जीवन के आखिरी वर्ष 1982 अर्थात् लगभग आधी शताब्दी तक वह रचना कर्म में सक्रिय बने रहे ।